सकारात्मक शिक्षा नीति के चिन्ताजनक पहलू

दिशा नवानी

टी.एस.आर.सुब्रमह्मण्यम की अध्यक्षता में नई शिक्षा नीति के विकास के लिए गठित कमेटी की रिपोर्ट (सुब्रमह्मण्यम कमेटी रिपोर्ट) का कई कारणों से बेसब्री के साथ इन्तजार हो रहा था। तीन सबसे महत्वपूर्ण कारण थे- (क) यह रिपोर्ट 30 साल के अन्तराल पर आ रही है (पिछली नीति 1986 में बनी थी); (ख) यह दक्षिणपंथी भारतीय जनता पार्टी द्वारा की जा रही पहलकदमी है, जो भूतकाल में (राज्यों तथा केन्द्र, दोनों में) शिक्षा में अपने हस्तक्षेपों की वजह से शिक्षा का भगवाकरण किए जाने की संभावनाओं की अटकलों को जन्म देती है; (ग) यह एक ऐसे समय आ रही है जब 1990 के दशक में ''ढांचागत समायोजन सुधारों'' से शुरू हुई निजीकरण और वैश्वीकरण की नव-उदारवादी लहर शिक्षा तथा स्वास्थ्य समेत अर्थव्यवस्था एवं समाज के कई क्षेत्रों को अपनी चपेट में ले चुकी है।

यह लेख प्रस्तावित नीति की ध्यानपूर्वक जांच-पड़ताल करता है और स्कूली शिक्षा के संबंध में इसके निहितार्थ को समझने का प्रयास करता है। इसे तीन भागों में बांटा गया है- मजबूत पक्ष, चिन्ताजनक हिस्से और निष्कर्ष।

सुब्रमह्मण्यम कमेटी रिपोर्ट दो खण्डों में है। दूसरे खण्ड में इसकी सैद्धांतिक अवधारणा में प्रयोग किए गए प्रासंगिक अनुलग्नक हैं जबकि पहले खण्ड में 217 पृष्ठों में फैले नौ अध्याय हैं। रिपोर्ट पाठक को हमारे देश की शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित करने वाले विभिन्न मुद्दों से अवगत करवाती हुई चलती है। यह गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के माध्यम से भारत के सशक्तीकरण के अपने सपने को हमारे समक्ष रखती है; इसके विकासक्रम में अपनाए गए दृष्टिकोण और कार्यप्रणाली का विशेष रूप से उल्लेख करती है; पहले चार अध्यायों में शिक्षा की नई राष्ट्रीय नीति के परिप्रेक्ष्य और उद्देश्यों को सामने लाती है और उसके तर्काधार को रेखांकित करती है। अगले पांच अध्यायों में शिक्षा, स्कूली शिक्षा, उच्च शिक्षा की शासन प्रणाली तथा राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं को मजबूती देने के लिए आवश्यक सुधारों से संबंधित मुद्दों की चर्चा की गई है। अन्तिम अध्याय नीति की सिफारिशों का सार प्रस्तुत करता है।

सकारात्मक पहलू

नीति को स्पष्ट, सुसंगत और व्यवस्थित तरीके से प्रस्तुत किया गया है। यह स्वीकारने में शरमाया नहीं गया है कि राज्य द्वारा सालों की उपेक्षा की वजह से हमारी शिक्षा व्यवस्था को चोट पहुंची है। इसके लिए जिम्मेदार हितधारकों को लताड़ने से भी बचा नहीं गया है।

इसकी एक उल्लेखनीय विशेषता इसे बनाने के लिए अपनाई गई पुख्ता, व्यापक और सहभागी कार्यप्रणाली है जिसमें ऑनलाइन मशविरे, संस्थाओं और गैर-सरकारी संगठनों के साथ बैठकें, विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के दौरे, विद्यार्थियों, शिक्षकों, अभिभावकों, विद्यालय/महाविद्यालय प्रबंधन के प्रतिनिधियों तथा

स्थानीय अधिकारियों के साथ बातचीत शामिल थे। रिपोर्ट में भी चर्चा में आए मुद्दों के पक्ष और विपक्ष, दोनों तरह की दलीलों की स्पष्ट और सन्तुलित अभिव्यक्ति दिखाई देती है।

कमेटी देश की मौजूदा शिक्षा-व्यवस्था के खतरों की सीधे-सीधे, बेलाग स्वीकारोक्ति से नहीं बचती। किसी एक राजनैतिक पार्टी/सरकार को दोष दिए बिना, कमेटी ''राजनैतिक उदासीनता'' और ''हस्तक्षेप'' को हमारे देश में शिक्षा के निराशाजनक परिदृश्य के लिए जिम्मेदार मुख्य कारक मानती है। रिपोर्ट इस बात को दोहराती है कि अच्छी गुणवत्ता की शिक्षा की समाज के सभी तबकों तक पहुंच होनी चाहिए, जो इस समय नहीं है। सामाजिक पहुंच और समता के मुद्दे अब भी जटिल हैं और ये योजनाबद्ध, सर्वसहमत तरीके से हल होने चाहिए।

कमेटी प्रौद्योगिकी में छुपी अपार संभावनाओं को काम में लाने के महत्व को पहचानती है और डिजिटल इण्डिया जैसी पहलकदमियों की अहमियत को भी, लेकिन उतनी ही सख्ती से यह भी कहती है कि अकेली प्रौद्योगिकी बुरी गुणवत्ता की शिक्षा की समस्या को हल करने के लिए काफी नहीं है। यह चेतावनी भी दी गई है कि ''विशेष तौर से प्राइमरी स्तर पर प्रयोगों से स्पष्ट संकेत मिलता है कि शिक्षक का स्थान कोई नहीं ले सकता, सूचना प्रौद्योगिकी स्वयं में विद्यार्थी तक आवश्यक शिक्षण सामग्री नहीं पहुंचा सकती'' (एम.एच.आर.डी 2016; 45)। यह ऐसे वक्त में खास तौर पर महत्वपूर्ण हो जाता है जब शिक्षक-प्रूफ यानी शिक्षक रहित कक्षाओं की बात करने का चलन है; साथ ही मोबाइल फोन और टेबलेट को जोर-शोर से, बिना किसी झिझक के बढ़ावा दिया जा रहा है और उन्हें उन परंपरागत कक्षाओं का स्थान लेने में समर्थ माना जाने लगा है जिनमें खुद शिक्षक द्वारा उपस्थित होकर शिक्षण करवाया जाता है।

कमेटी इस बात को पूरे बल के साथ दोहराती है कि राज्य को स्थिति सम्भालने के लिए जुटना चाहिए, शिक्षा को प्राथमिकता देनी चाहिए और सकल घरेलू उत्पाद का कम से कम 6 प्रतिशत उस पर लगाते हुए अपने नागरिकों के लिए शिक्षा उपलब्ध करवाने की प्रमुख जिम्मेदारी लेनी चाहिए। वह शिक्षा के तेजी से होते निजीकरण पर चिन्ता व्यक्त करती है और इस नजरिए का समर्थन करती है कि सरकारी स्कूलों से निजी स्कूलों में बच्चे उनके बेहतर होने की वजह से नहीं जा रहे बल्कि इसके पीछे कई अन्य कारण हो सकते हैं। लेकिन यह तो माना गया है कि ''व्यवस्था काफी हद तक बीमार है और उसका कायाकल्प किए जाने की जरूरत है... शिक्षा की गुणवत्ता, जो तात्कालिक तौर पर बेहद जरूरी है, सबसे अधिक हताहत हुई है, जिसके चलते शिक्षा की पवित्र प्रक्रिया एक अनियन्त्रित व्यापारिक व्यवस्था में तबदील हो गई है'' (एम.एच.आर.डी 2016; 39)।

कमेटी ने एक अलग अकादमिक कैडर की अहमियत को पहचाना है। इसकी अनुपस्थिति के चलते राज्यों में शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं की क्रियाशीलता में अवरोध और कठिनाइयां आती रही हैं। कमेटी का सुझाव है कि शिक्षक-प्रशिक्षकों की योग्यता भी महाविद्यालयों के प्राध्यापकों जैसी होनी चाहिए और उन्हें प्राध्यापकों के बराबर वेतन-श्रेणी में रखा जाना चाहिए।

कमेटी मध्याह्न भोजन योजना के विस्तार और सार्वभौमीकरण का अनुमोदन करते हुए प्रारम्भिक विद्यालयों में पढ़ने वाले सब बच्चों तक इसकी पहुंच की बात तो करती ही है, इसे माध्यमिक स्तर तक विस्तार देने की भी बात करती है। इस प्रकार यह इस योजना की संपुष्टि करती है, जबकि इस पर सवाल खड़े किए जाते रहे हैं, विशेष तौर से तब जब इसके क्रियान्वयन के दौरान 'फूड पोइजनिंग' की कुछ घटनाएं हुईं और इसके संदर्भ में सामाजिक पूर्वाग्रह के निरन्तर बने रहने के मामले मीडिया में उठाए गए।

लेख का अगला हिस्सा स्कूली शिक्षा के संदर्भ में इस रिपोर्ट की मान्यताओं और सिफारिशों में दिखाई देने वाली कुछ विशेष कमियों पर रौशनी डालता है।

चिन्ताजनक सरोकार

कमेटी के मुताबिक शिक्षा के उद्देश्यों में ये चार आवश्यक तत्व आने चाहिए- मूल्य-निर्माण, जागरूकता, ज्ञान और दक्षताएं।

शिक्षा को हम में भारतीय होने का गर्व विकसित करना चाहिए।

सत्य, धर्म, शांति, प्रेम और अहिंसा वे केन्द्रीय सार्वभौमिक मूल्य हैं जिन्हें मूल्य-आधारित शिक्षा कार्यक्रम के नींव-पत्थर के रूप में चिन्हित किया जा सकता है... एक अन्य ध्यान देने लायक पक्ष धर्म का है, जो सबसे अधिक दुरुपयोग की गई तथा गलत तरह से समझी गई अवधारणा है... कुछ मामलों में वैचारिक मतभेद हों तो भी लोगों को सह-अस्तित्व में रहना और किसी अन्य धर्म के विरुद्ध घृणा न रखना सीखना होगा (एम.एच.आर.डी. 2016; 11, 12)।

अजीब बात है कि यह खण्ड देश के संविधान का बहुत कम जिक्र करता है और इसी के चलते संवैधानिक ढांचे और मूल्यों की अनुपस्थिति खुले तौर पर दिखाई देती है।

इतना ही अजीब प्राचीन भारत का, विशेष तौर से उसकी शिक्षा व्यवस्था का, बिना किसी आलोचनात्मक दृष्टि के प्रशंसित किया जाना है। सामाजिक ताने-बाने में जातीय और लैंगिक असमानताओं तथा अन्य ऐसी ही अनगिनत सामाजिक विषमताओं के बावजूद, भारतीय सभ्यता को ''संसार की सबसे शानदार जीवित सभ्यता के रूप में सराहा गया है (एम.एच.आर.डी. 2016; 5)। जोर देकर कहा गया है कि 'भारत की विरासत, संस्कृति और इतिहास की विविधता को स्वीकार करने की परम्परा से परिचित होने पर सामाजिक एकता एवं सामंजस्य तथा धार्मिक सौहार्द की ओर बढ़ा जा सकता है। शिक्षा, विशेषकर स्कूली शिक्षा, की विषयवस्तु और प्रक्रिया को इसी के अनुरूप तैयार किया जाना होगा'' (एम.एच.आर.डी. 2016; 12)। इसमें 'सुरक्षित पाठ्यपुस्तकें' (क्रूग 1960) खास तौर से सामाजिक-विज्ञान के विषयों में, होने की कामना की अनुगूंज सुनाई पड़ती है। ऐसी पुस्तकें जो गैरबराबरी, वंचना और सामाजिक द्वंद्व के मुद्दों पर चर्चा न करके, केवल एक महान देश तथा सामूहिक हित व कल्याण के निष्प्राण विचारों को ही प्रस्तुत करें।

शिक्षा को एक कार्यात्मक, उपयोगी सांचे में ढाल कर प्रस्तुत किया गया है, जिसके तहत उसे क्षेत्रीय और सामाजिक असमानताओं को घटाने तथा ''शांति, सहिष्णुता, धर्म-निरपेक्षता व राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा'' देने वाले सुदृढ़ रास्ते के तौर पर देखा गया है (एम.एच.आर.डी. 2016; 12)। एक ऐसे शान्तिपूर्ण और धर्म-निरपेक्ष समाज की अभिलाषा को तो यकीनन नहीं नकारा जा सकता जिसमें विभिन्न धर्मों-विश्वासों के लोग परस्पर सामंजस्य में रहें, लेकिन अकेली शिक्षा किस हद तक यह हासिल कर सकती है इसे परखे जाने की जरूरत है। इससे भी अधिक उपयुक्त शायद ऐसे जिज्ञासू तथा आलोचनात्मक दिमागों को तैयार करने की जरूरत का होना है, जो सामाजिक असमानताओं और शोषण पर सवाल उठाएं, उन्हें समाप्त करने व सभी सामाजिक समूहों के समग्र विकास के लिए काम करें। इसी के साथ, स्कूली शिक्षा की प्रक्रियाओं और विषयवस्तु पर सवाल उठाने की भी आवश्यकता है। यह भी विश्लेषित करने की जरूरत है कि किस तरह विषमताओं को न्यायोचित ठहरा दिया जाता है और बहुत बार सामाजिक संघर्षों को आतंकी गतिविधियों के नाम का नकाब पहना दिया जाता है।

शिक्षा का अधिकार कानून में संशोधन

सीखने-सिखाने के नतीजों की केन्द्रीयता : कमेटी की सिफारिश है कि ''शिक्षा-अधिकार कानून में संशोधन करके ढांचागत आवश्यकताओं को पूरा करने के अलावा शिक्षा की गुणवत्ता को सीधे-सीधे प्रभावित करने वाले सीखने-सिखाने के नतीजों के लिए भी मानक मुहैया करवाए जाएं'' (एम.एच.आर.डी. 2016; 82)। यह सुझाव भी दिया गया है कि ''प्रत्येक कक्षा के लिए सीखने-सिखाने के नतीजे तय होने चाहिए और समय-समय पर आन्तरिक और बाह्य मूल्यांकन के माध्यम से उनका आकलन होना चाहिए। निर्धारित समय-सीमा में नतीजे न देने की सूरत में शिक्षकों की जवाबदेही होनी चाहिए'' (एम.एच.आर.डी. 2016; 69)।

जाहिर है कि यह समस्याग्रस्त बात है क्योंकि इसमें सीखने/उपलब्धि को मूल्यांकन-सर्वेक्षणों (विशेषकर ऐनुअल स्टेटस ऑव एजुकेशन रिपोर्ट - *असर*) में निर्धारित सीखने-सिखाने के नतीजों की संकीर्ण समझ द्वारा परिभाषित किया गया

है जबकि ये सर्वेक्षण कुल मिलाकर विद्यार्थियों की बुनियादी साक्षरता और सांख्यिकीय दक्षताओं को जांचने के इर्द-गिर्द घूमते हैं। विद्वानों ने सीखने-सिखाने के नतीजों के इस प्रकार के मूल्यांकन से संबद्ध उद्देश्यों और कार्यप्रणालियों के समस्याग्रस्त होने की बात दर्शाई है। ''उदाहरण के लिए, *असर* की पठन-जांच यांत्रिक है और मुख्यतः डिकोडिंग यानी अक्षर-पहचान पर केंद्रित है। दूसरी ओर, जांचने के लिए इस्तेमाल में लाए जाने वाले बेहतर वैश्विक तरीके बच्चे में उस अर्थ की खोज को महत्व देते हैं, जो किसी पाठ में आए संदर्भ से पैदा होती है; यह पक्ष असर द्वारा उपेक्षित रहता है'' (कुमार 2015)।

रिपोर्ट को और आगे पढ़ने पर एहसास होता है कि सीखने-सिखाने के नतीजों से संबद्ध समझ पर बी.एस.ब्लूम (1975) की 'मास्ट्री लर्निंग'(Mastery Learning) की अवधारणा हावी दिखाई देती है। रिपोर्ट का मानना है कि ''अधिकतर विद्यार्थी (शायद 90 प्रतिशत से भी अधिक) उस सब पर महारत हासिल कर सकते हैं जो उन्हें सिखाया जाना है और शिक्षण का काम उन साधनों को तलाशना है जो हमारे विद्यार्थियों को संबद्ध विषय पर अधिकार पाने में मदद करें'' (एम.एच.आर.डी. 2016; 334)। रिपोर्ट का मानना है कि समय और शिक्षण की रणनीतियों में परिवर्तन से सब बच्चों में सीखने-सिखाने के एक से नतीजे आ सकते हैं। इसी तर्ज पर यह कहा गया है कि ''इस संदर्भ में 90-90 सिद्धांत पर बल देना भी महत्वपूर्ण है जिसके तहत प्रत्येक कक्षा के 90 प्रतिशत विद्यार्थियों को पाठ्यचर्या की विषयवस्तु का 90 प्रतिशत आत्मसात करना चाहिए... इसे पाठ्यचर्या-सुधार की वैधता को जांचने तथा कक्षा में शिक्षण की सफलता की कसौटी के तौर पर तय किए जाने की आवश्यकता है'' (एम.एच.आर.डी. 2016; 103)।

यहां व्यक्त उद्देश्य श्रेयस्कर लग सकता है लेकिन सीखने को लेकर इस व्यवहारवादी समझ में समस्याएं हैं- इसमें पूरा जोर सीखने की बजाए जांचने पर और शिक्षण के बजाए परीक्षा पर लग जाता है और ज्ञान की ऐसी संकुचित समझ तैयार होती है कि उसे वस्तुनिष्ठ तरीके से जांचा जा सकता है। यह सीखने की रचनावादी समझ के विरुद्ध है, जिसका बल अर्थ-निर्माण और विचारों की विविधता पर होता है; ज्ञानार्जन को स्वयं के व्यक्तिगत जीवन और अनुभवों के साथ जोड़ने पर होता है।

इस सुझाव के साथ एक और समस्या है। बच्चों द्वारा एक विशेष तरह से परिभाषित ज्ञान हासिल न किए जाने पर अकेले शिक्षक को इसके लिए जिम्मेदार समझा जाता है। इस तर्क के विरुद्ध जाना तो मुश्किल है कि शिक्षक का मूल दायित्व यह सुनिश्चित करने का है कि विद्यार्थी पर्याप्त और अर्थपूर्ण तरीके से सीखे। लेकिन उनकी असफलता के लिए पूरी तरह शिक्षक को जिम्मेदार ठहराना शायद इसलिए न्यायसंगत नहीं होगा क्योंकि कुछ बच्चे मजबूरी भरे सामाजिक-आर्थिक हालात का शिकार हो सकते हैं। सीखने-सिखाने के नतीजे शिक्षकों के प्रदर्शन के मूल्यांकन का एकमात्र पैमाना नहीं हो सकते। सामाजिक संदर्भ व स्कूल की उन स्थितियों को भी ध्यान में रखना जरूरी है जिनमें शिक्षक काम करते हैं (विशेष तौर से अनुबंध पर काम करने वाले शिक्षक या सस्ते-चलताऊ स्कूलों में काम करने वाले कम योग्यता-प्राप्त, कम वेतनभोगी शिक्षक जिनकी छोटी-छोटी बातों पर भी नजर रखी जाती है)।

निजी स्कूलों के लिए ढांचा-संबंधी मानकों में हल्कापन : कमेटी ने दलील दी है कि ''किसी स्कूल की मान्यता केवल भौतिक ढांचे की उपलब्धता पर निर्भर नहीं होनी चाहिए बल्कि ऐसे स्कूलों द्वारा प्रदान की जा रही शिक्षा की गुणवत्ता के मूल्यांकन को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए और यह एक स्वतंत्र प्रणाली द्वारा तय किया जाना चाहिए'' (एम.एच.आर.डी. 2016; 81)। इसके अलावा यह भी वकालत की गई है कि ''निजी और राजकीय स्कूलों में मानकों को लागू किए जाने के मामले में भेदभाव नहीं होना चाहिए और सुनिश्चित होना चाहिए कि इन्हें न अपनाए जाने पर दण्डित किया जाए'' (एम.एच.आर.डी. 2016; 82)।

जहां ऊपर दिया गया दूसरा सुझाव स्कूलों में समानता स्थापित करने के हिसाब से अच्छा हो सकता है वहीं पहले सुझाव पर कुछ सवाल खड़े होते हैं। इस संदर्भ में कमेटी ने अहमदाबाद की झुग्गी-झोपड़ियों में सीखने-सिखाने के कई केन्द्र चलाने वाली 'ज्ञानशाला' की पहलकदमी की सराहना की है। एक संस्था के काम को अलग से पेश करना और उसके

प्रयासों की प्रशंसा करना सब बच्चों को औपचारिक स्थलों में सार्वभौमिक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य के उलट प्रतीत होता है। जाहिर है कि 'ज्ञानशाला' ऐसा नहीं करती है। वास्तव में तो इसे गरीब बच्चों के लिए कम-खर्च वाले ऐसे शैक्षिक-मॉडल को बढ़ावा देने के लिए जाना जाता है जहां शिक्षकों के वेतन और काम की स्थितियों के साथ आम तौर पर समझौता किया जाता है।

यह हमें एक और सवाल की ओर भी ले जाता है- कौन तय करेगा कि ऐसे स्कूलों में दी जाने वाली ''शिक्षा की गुणवत्ता'' कैसी है? कई अध्ययनों ने इस तरह के सस्ते स्कूलों द्वारा गुणवत्ता को न्यूनतमवादी तरीके से परिभाषित करने और मौजूदा राजकीय स्कूलों से ''बेहतर'' होने के दावे से जुड़ी समस्याओं की ओर ध्यान दिलाया है।

यह भी दिलचस्प है कि विद्यार्थी के जीवन में खेलों और शारीरिक शिक्षा की अहमियत पर बल देने वाले खण्ड में स्वयं कमेटी टिप्पणी करती है कि ''शहरी और ग्रामीण, दोनों इलाकों में कई निजी स्कूलों में अकसर ऐसी सुविधाओं का कोई प्रावधान नहीं था... समय आ गया है कि सरकारी और निजी, दोनों स्कूलों में खेलों की सुविधाओं के लिए विशेष तौर से बजट हो जिसे कहीं और न लगाया जाए'' (एम.एच.आर.डी. 2016; 101)। एक ऐसे देश में जहां स्कूलों के बीच बहुत बड़े ढांचागत अन्तर हैं, कुछ-एक के लिए मानकों में ढील होगी तो वह गरीबों के लिए सस्ती/संदिग्ध गुणवत्ता की शिक्षा को और अधिक वैधता प्रदान कर देगी।

फेल न करने की नीतिः शिक्षा अधिकार कानून-2009 में एक और प्रस्तावित संशोधन उस नीति से संबंधित है जिसके तहत बच्चे को अनुत्तीर्ण होने पर उसी कक्षा में रोक कर नहीं रखा जाता। इस नीति पर बहुत वाद-विवाद रहा है। नीति के पक्ष और विपक्ष में दलीलें पेश करने के बाद कमेटी 11 साल से कम उम्र (कक्षा-5) के बच्चों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया पेश करती है। लेकिन नीति के सकारात्मक पक्षों की बात करते समय उस सबसे महत्वपूर्ण तर्क का जिक्र नहीं किया गया जो अकादमिक तथा जमीनी स्तर पर काम करने वाले, दोनों तरह के लोगों द्वारा दिया जाता है, कि ''जब दोष व्यवस्था का है तो बच्चे को सजा क्यों मिले?'' अनुत्तीर्ण बच्चे को उसी कक्षा में न रोके रखने की इस नीति के हक में दी गई दलीलों में भी दोषी अकेले बच्चे को ही मान लिया गया है। ऐसे बच्चे को उसी कक्षा में रोके रखने से उत्पन्न होने वाली मुख्य समस्याओं में जिन कारणों की ओर ध्यान दिलाया गया है, उनमें आत्म-सम्मान का गिरा हुआ स्तर, अपराधी होने की संभावना, उसी कक्षा को दोहराए जाने की व्यर्थता और ड्रॉप-आउट होने की अवस्था शामिल हैं।

कमेटी ने सिफारिश की है कि उच्च प्राथमिक स्तर (यानी कक्षा 5 से 8) पर अनुत्तीर्ण बच्चे को उसी कक्षा में रोके रखने की प्रणाली को फिर से लागू किया जाए। इस बात को रेखांकित किया गया है कि उसके सुधार के लिए कोचिंग और अपनी सामर्थ्य को सिद्ध करने के लिए कम से कम दो अतिरिक्त मौके दिए जाने के बाद ही बच्चे को कक्षा में रोके रखा जाना चाहिए। सुझाव दिया गया है कि यह मार्गदर्शन शिक्षक द्वारा स्कूल के समय के बाद कक्षा में दिया जा सकता है और धीमी गति से सीखने वाले विद्यार्थियों को पिछड़े होने की समस्या में मदद के लिए प्रौद्योगिकी की सहायता ली जानी चाहिए। इस प्रावधान में दो समस्याएं हैंः (क) बच्चे को कक्षा-5 के बाद उसकी संबद्ध कक्षा में ही रोके रखना या उसे एक वैकल्पिक धारा की ओर धकेलना शिक्षा का अधिकार अधिनियम के उस बुनियादी प्रावधान के विरुद्ध जाता है, जिसके तहत कक्षा-8 तक सब बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा सुनिश्चित करवाई जानी है; और (ख) अतिरिक्त मार्गदर्शन तथा दो अतिरिक्त मौकों का सुझाव चाहे जितना भी हितैषी और परोपकारी लगे, यह समझ पाना मुश्किल है कि प्रौद्यागिकी किस तरह अचानक ''एक धीमी गति के शिक्षार्थी को एक पर्याप्त तौर पर अच्छा शिक्षार्थी'' बनने की दिशा में मदद कर देगी और कैसे आम तौर पर समय के दबाव में रहने वाला शिक्षक इस तरह के काम के लिए समय निकाल लेगा। यह भी असत्य नहीं है कि बच्चे अकसर अंतिम घण्टी बजने के साथ ही घरों को भाग जाते हैं - साथ ही, थके हुए शिक्षक से आशा नहीं की जा सकती कि वह एक से अधिक तरह की चुनौतियों से जूझ रहे बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अतिरिक्त प्रयास करे।

प्रारम्भिक शिशु-देखभाल एवं शिक्षा

कमेटी 4 से 6 साल के बच्चों के लिए प्रारम्भिक शिशु-देखभाल एवं शिक्षा मुहैया करवाने के संदर्भ में एक सशक्त नजरिया रखती है और यह सिफारिश भी करती है कि इसे एक अधिकार बनाया जाए। लेकिन हैरत की बात है कि इस आयु-समूह के सन्दर्भ में कमेटी ने शिक्षा का अधिकार कानून में संशोधन का सुझाव देना उचित नहीं समझा। यह बहुत अच्छे से विदित है कि 0 से 6 वर्ष आयु-समूह के बच्चों, विशेषकर लड़कियों के इस कानून के दायरे से बाहर होने के महत्वपूर्ण निहितार्थ हैं। वे स्कूल-पूर्व शिक्षा के लाभों से वंचित रह जाती हैं और इसलिए अपने उन विशेषाधिकार-प्राप्त साथियों के मुकाबले काफी प्रतिकूल अवस्था में होती हैं, जिन्हें ऐसी शिक्षा प्राप्त होने की वजह से बढ़त मिल जाती है।

दिलचस्प बात यह है कि राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों के अनुच्छेद-45 पर आधारित संवैधानिक (86वां संशोधन) अधिनियम (जिसके दायरे में 14 साल से कम उम्र के सब बच्चे आते थे) ने 0 से 6 साल के बच्चों को अनुच्छेद 21-क में प्रतिपादित मूल अधिकारों से बाहर रखा, और अनुच्छेद-45 में बनाए रखा था, जो संविधान का एक ऐसा प्रावधान है जिसे न्याय-सीमा के अधीन नहीं माना गया।

पाठ्यचर्या-सुधार

कमेटी वर्तमान स्कूली शिक्षा की उस प्रकृति को जांचने का भी निवेदन करती है, जो बच्चों को परीक्षाओं के लिए तैयार करने से बंधी हुई है। इस उद्देश्य के लिए पाठयचर्या-सुधार का सुझाव दिया गया है जिसके तहत कक्षा में सीखना-सिखाना अधिक व्यापक आधार लिए हुए हो और केवल पाठ्यपुस्तक तक सीमित न हो। हैरत की बात है कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा-2005 का या तो कोई जिक्र ही नहीं है, या है भी तो न के बराबर, हालांकि वह बिल्कुल इसी दिशा की बात करती है। यह पाठ्यचर्या-रूपरेखा इससे पहले की पाठ्यचर्या-रूपरेखाओं से अलग थी क्योंकि इसने पाठ्यचर्या की असफलता को स्वीकारा और स्कूलों में प्रदान किए जाने वाले उन शैक्षिक अनुभवों को भी, जिनकी वजह से काफी संख्या में बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं। यह कमेटी तो अब राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 के अनावश्यक हो जाने की घोषणा करने में भी नहीं हिचकिचाती - ''ग्यारह साल पहले तैयार यह दस्तावेज, अपनी प्रासंगिकता खो चुका है'' (एम.एच.आर.डी. 2016; 103)।

अब भी हम स्कूलों में बच्चों को सार्थक तथा अर्थपूर्ण शैक्षिक अनुभव प्रदान करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। ऐसे में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा-2005 की मूलभूत भावना और सिद्धांत अब भी प्रासंगिक हैं। हां, यह जरूर है कि पिछले 11 सालों के अनुभवों को ध्यान में रखते हुए इस पर पुनर्विचार तो होना चाहिए।

परीक्षा-सुधार

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा-2005 का न्यायसंगत जिक्र एक ही जगह आता है - उस खण्ड में जो मौजूदा परीक्षा-व्यवस्था का विश्लेषण तथा उसके लिए प्रस्तावित सुधारों के बारे में रिपोर्ट का नजरिया रखता है।

सार्वजनिक परीक्षाओं के सन्दर्भ में सुझाया गया है कि कक्षा-10 की बोर्ड की परीक्षा प्रत्येक विषय में दो भागों में होनी चाहिए। भाग-'क' सब विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य हो- विशेष तौर से उनके लिए, जो कक्षा-10 के साथ ही अपनी पढ़ाई पूरी कर लेना चाहते हैं तथा कक्षा-11 या अन्य डिप्लोमा पाठ्यक्रमों को छोड़ कर अन्य विकल्प देखना चाहते हैं। भाग-'ख' उन विद्यार्थियों के लिए हो सकता है जो आगे भी पढ़ना चाहते हैं। पंजीकरण के समय विद्यार्थी को भाग-'ख' की परीक्षा देने की इच्छा प्रकट करनी होगी। कमेटी का यह भी कहना है कि भाग- 'ख' की परीक्षा के लिए इच्छुक किसी भी विद्यार्थी को किसी भी कारण ऐसा करने से रोका नहीं जाना चाहिए (एम.एच.आर.डी. 2016; 108)।

उच्च और निम्न, दो स्तरों पर पढ़ाई के क्षेत्र मुहैया करवाने का विचार अच्छा लगता है क्योंकि इसके चलते सब विद्यार्थियों से सब विषयों में एक सी आशाएं नहीं बांधी जातीं बल्कि सबको अलग-अलग स्तरों पर भिन्न-भिन्न विषय

पढ़ने का मौका मिलता है। यह बात गणित और विज्ञान के संदर्भ में और अधिक स्पष्टता से कही गई हैः ''भाग-'ख' का चुनाव करने वाले विद्यार्थियों को ध्यान में रखना होगा कि उच्च-स्तरीय गणित और विज्ञान वाले पाठ्यक्रमों में जाने के लिए उनकी पात्रता सीमित हो सकती है'' (एम.एच.आर.डी. 2016; 109)। यह एक तर्कसंगत सीमा है, लेकिन रिपोर्ट के इसी खण्ड में इससे पहले सुझाई गई बात थोड़ी समस्याग्रस्त हैः ''केवल कक्षा-10 पूर्ण करते हुए प्रमाण पत्र हासिल करके (व्यावसायिक पाठ्यक्रमों तथा नौकरियों समेत अन्य विकल्पों में जाने के लिए) व्यवस्था में से निकलने के इच्छुक विद्यार्थी होंगे तो उनमें और उनके माता-पिता में चिन्ता और तनाव कम होगा'' (एम.एच.आर.डी. 2016; 108)। प्रभावी तौर पर इसका अर्थ है कि जो विद्यार्थी किसी विषय के साथ उच्च स्तर पर संबद्ध नहीं होना चाहते, उन्हें अंततः औपचारिक विद्यालयी व्यवस्था को छोड़ना होगा। एक 14-15 साल के विद्यार्थी से यह आशा रखना कि वह नामांकन के समय पर बोर्ड की परीक्षा के संदर्भ में यह निर्णय कर पाए, शायद उसकी उम्र को ध्यान में रखते हुए उचित नहीं है। नामांकन के समय ही आगे पढ़ पाने का विकल्प बन्द कर दिया जाता है और एक विद्यार्थी अगर बोर्ड की परीक्षा में अपने प्रदर्शन को देखने के बाद आने वाले साल में पढ़ने के मकसद से मन बदल लेता है तो भी औपचारिक शिक्षा जारी न रखने का उसका निर्णय पलटा नहीं जा सकेगा।

रिपोर्ट विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों, अनुसूचित जनजातियों और छः साल से कम उम्र के बच्चों का विशेष जिक्र करती है, लेकिन अन्य सामाजिक समूहों के मुकाबले बहुत पिछड़ चुकी लड़कियों, अनुसूचित जातियों और धार्मिक अल्पसंख्यकों, विशेष तौर पर मुसलमानों की शिक्षा से संबद्ध मुद्दों पर चर्चा नहीं करती।

निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण सुब्रमन्यन कमेटी रिपोर्ट की एक साहित्यिक समीक्षा से संबद्ध है। जरूरी नहीं कि यह हर समय ही धरातल की वास्तविकता को अनुप्राणित करे, और वास्तव में तो शायद उसके विरुद्ध जाए, लेकिन यह धरातल पर पहलकदमियों और हस्तक्षेपों के लिए एक रूपरेखा निर्धारित करती है। इसलिए तकाजा है कि विभिन्न हितधारक इसकी ध्यानपूर्वक सूक्ष्म छानबीन करें ताकि सम्भव हो तो आवश्यक संशोधन किए जा सकें या इसकी सिफारिशों को व्यवहार में परिवर्तित करते समय सावधानी बरती जा सके। ◆

लेखिका परिचयः टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोश्यल साइंसेज, मुम्बई के स्कूल ऑफ एज्युकेशन में एसोसिएट प्रोफेसर और अध्यक्ष हैं। आरंभिक शिक्षा में एम.ए. कोर्स की समन्वयक हैं। शिक्षा के समाजशास्त्र, पाठ्यचर्या, शिक्षाशास्त्र और आकलन संबंधी मुद्दों में गहरी रुचि है। शिक्षा संबंधी विभिन्न मुद्दों पर तमाम पत्र-पत्रिकाओं में सतत लेखन।

भाषान्तर : रमणीक मोहन

(यह लेख 'इकॉनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली' के अगस्त, 2016 अंक से साभार लिया गया है।)

इस लेख को अंतिम रूप देते वक्त रश्मि पालीवाल और सुरेश रेड्डी द्वारा दिए गए बहुमूल्य सुझावों के लिए लेखिका उनकी आभारी है।

संदर्भ

Bloom, B S (1975): "Mastery Learning and Its Implications for Curriculum Development," Curri culum Design, M Golby, J Greenwald and West Ruth (eds), London: CELBS and Croom Helm, with Oxford University Press.

Krug, M M (1960): "Safe Textbooks and Citizenship Education," School Review, Vol 68, No 4, pp 463-80.

Kumar, Krishna (2015): "We Need a Real Learning Grid for India's Elementary Schools," Hindustan Times, 21 June, www.hindustantimes.com/htview/ we-need-a-real-learning-grid-for-india-selementary-schools/story-qCMaOfeJhps1vXssHzhiGP.html.

MHRD (2016): "National Policy on Education 2016: Report of the Committee for Evolution of the New Education Policy," Ministry of Human Resource Development, Government of India, New Delhi.